[2014] 10 एस.सी.आर. 1004

समीर सिंह एवं अन्य

बनाम

अब्दुल रब एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 9699/2014)

अक्टूबर 14 , 2014

[न्यायमूर्ति, दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति, वी. गोपाल गौड़ा.]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 227 - दायरा - निष्पादन न्यायालय का आदेश, जिसमें आदेश 21 नियम, 97, 99 और 101 के तहत दाख़िल आवेदन को इस आधार पर पोषणीय नहीं माना गया कि उक्त न्यायालय पदकार्य निवृत (फंक्टस औफिसियो) हो गया है -- उक्त आदेश डिक्री का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि इस से कोई न्यायनिर्णयन नहीं हुआ है-- यदि अधीनस्थ न्यायालय अपने उस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, जो कानून द्वारा उसमें निहित नहीं है या इस प्रकार निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहता है, तो ऐसा आदेश सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण योग्य है और 01.07.2002 के प्रभाव से संशोधन के बाद, उक्त शक्ति का प्रयोग अनुच्छेद 227 के तहत किया जाता है - अपीलकर्ताओं ने निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश, को इस आधार पर आक्षेपित करते हुए, अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का सही ढंग से आह्वान किया था कि वह उसमें निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा है - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 115.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

आदेश 21, नियम 99 से 103- एकपक्षीय डिक्री का निष्पादन - निष्पादन न्यायालय की शक्ति - निष्पादन की विषय वस्तु (संपत्ति) में किसी अजनबी द्वारा अधिकार, हक़ और हित का दावा करते हुए, दाखिल आवेदन - निष्पादन न्यायालय को पक्षकारों के दरम्यान उत्पन्न होने वाली संपत्ति में, अधिकार, हक़ या हित से संबंधित सभी प्रश्नों पर न्याय निर्णय करने का अधिकार है - इसमें उस अजनबी का दावा भी शामिल है

जो बेदखली की आशंका रखता है या जिसे पहले ही अचल संपत्ति से बेदखल किया जा चुका है।

अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

निर्धारित कियाः 1.1. निष्पादन न्यायालय को पक्षकारों के बीच संपत्ति संबंधित उत्पन्न होने वाले अधिकार, हक़ या हित से संबंधित सभी प्रश्नों पर निर्णय लेने का अधिकार है। इसमें किसी अजनबी का दावा भी शामिल है जो बेदखली की आशंका रखता है या जिसे पहले ही अचल संपत्ति से बेदखल किया जा चुका है। स्व-निहित संहिता, जैसा कि यह न्यायालय व्यादेश देता रहा है, निष्पादन न्यायालय को विवाद पर न्याय निर्णय करने का आदेश देती है और इसका उद्देश्य कार्यवाही की बहुलता से बचना है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि 1976 के संशोधन से पहले शिकायत को मुकदमा दायर करके सुलझाना आवश्यक था, लेकिन संशोधन के बाद पूरी जांच निष्पादन न्यायालय द्वारा की जानी है। [पैरा 21] [1018-एफ-एच; 1019-ए]

बाबुला/ बनाम राज कुमार और अन्य 1996 (2) एससीआर 763 =1996 (3) एससीसी 154; घासी राम एवं अन्य बनाम चैत राम सैनी एवं अन्य 1998 (3) एससीआर 863 = 1998 (6) डी एससीसी 200; तथा राम कुमार तिवारी एवं अन्य बनाम दीनानाथ एवं अन्य एआईआर 2002 छत्तीसगढ़ 1; एस राजेश्वरी बनाम एस एन कुलशेखरन एवं अन्य 2006 (3) एससीआर 610 = 2006 (4) एससीसी 412; नूरुद्दीन बनाम डॉ के एल आनंद 1994 (4) अनुपूरक एससीआर 322 = 1995 (1) एससीसी 242; भानवर लाल बनाम ई सत्यनारायण एवं अन्य 1994 (4) अनुपूरक एससीआर 208 = 1995 (1) एससीसी 6; ब्रह्मदेव चौधरी बनाम ऋषिकेश प्रसाद जायसवाल एवं अन्य 1997 (1) एससीआर 463 =1997 (3) एससीसी 694 --- निर्दिष्ट किये गये।

1.2. सी.पी.सी. के नियम 103 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जब किसी आवेदन पर नियम 98 या नियम 100 के तहत निर्णय लिया जाता है तो उक्त आदेश में वही शक्ति होगी जो डिक्री होने पर होती है। इस प्रकार, यह एक डीम्ड डिक्री है। यदि कोई न्यायालय इस आधार पर निर्णय देने से मना कर देता है कि उसके पास क्षेत्राधिकार नहीं है, तो उक्त आदेश, डिक्री का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता। वर्तमान मामले में, निष्पादन न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि वह पदकार्य निवृत (फंक्टस ऑफ़िसियो) हो गया है और इस तरह, यह कोई जांच शुरू या जारी नहीं कर सकता है। अपीलकर्ताओं ने संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का सही ढंग से आह्वान किया था, जिसमें निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह उसमें निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा है। [पैरा 21) [1019-ए-डी]

1.3. चाहे निष्पादन न्यायालय ने, प्राप्त परिस्थितियों में, सही ढंग से यह विचार व्यक्त किया हो कि वह पदकार्य निवृत (फंक्टस ऑफ़िसियो) हो गया है या नहीं और इस प्रकार उसके पास अधिकार क्षेत्र है या नहीं, मूल रूप से अधिकार क्षेत्र संबंधी त्रुटि के सुधार से संबंधित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई न्यायनिर्णयन नहीं हुआ है। यदि कोई अधीनस्थ न्यायालय कानून द्वारा उसमें निहित न किए गए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है या इस प्रकार निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहता है, तो संहिता की धारा 115 के तहत उक्त आदेश पुनरीक्षण योग्य है। 01.07.2002 के प्रभाव से, सी.पी.सी. की धारा 115 के संशोधन के बाद, उक्त शक्ति संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत प्रयोग की जाती है। [पैरा 22) [1019-ई-एफ; 1020-ए]

सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य 2003 (2) अनुपूरक एससीआर 290 = 2003 (6) एससीसी 675; जॉय चंद लाल बाबू बनाम कमलाक्ष चौधरी एवं अन्य एआईआर 1949 पीसी 239; केशरदेव चमरिया बनाम राधा किसान चमरिया एवं अन्य 1953 एससीआर 136 = एआईआर 1953 एससी 23 और चौबे जगदीश प्रसाद एवं अन्य बनाम गंगा प्रसाद चतुर्वेदी 1959 अनुपूरक एससीआर 733 = एआईआर 1959 एससी 492 - का अवलम्बन लिया गया।

1.4. उच्च न्यायालय ने यह राय देकर गलती की है कि निष्पादन न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय एक डिक्री है और इसलिए, अपील दायर की जानी चाहिए थी। आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है। उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत आवश्यकतानुसार मामले का विनिश्चय करेगा। [पैरा 23] [1020-सी-डी]

निर्दिष्ट केस लॉ :

1996 (2) एससीआर 763	निर्दिष्ट	पारा 11
1998 (3) एससीआर 863	निर्दष्ट	पारा 11
एआईआर 2002 छत्तीसगढ़ 1	निर्दिष्ट	पारा 11
2006 (3) एससीआर 610	निर्दिष्ट	पारा 12
1994 (4) अनुपूरक एससीआर 610	निर्दिष्ट	पारा 16
1994 (4) अनुपूरक एससीआर 208	निर्दिष्ट	पारा 17

1997 (1) एससीआर 463	**निर्दिष्ट**	**पारा 20**
2003 (2) अनुपूरक एससीआर 290	**अवलम्बन लिया गया**	**पारा 22**
एआईआर 1949 पीसी 239	**अवलम्बन लिया लिया**	**पारा 22**
1953 एससीआर 136	**अवलम्बन लिया लिया गया**	**पारा 22**
1959 अनुपूरक एससीआर 733	**अवलम्बन लिया लिया गया**	**पारा 22**

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 9699/2014.

झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के डब्ल्यूपीसी संख्या 348/2011 में दिनांक 22.06.2011 के निर्णय एवं आदेश से (उद्भूत)।

अपीलकर्ताओं की ओर से सौरभ एस. सिन्हा, अरिजीत मजूमदार, अभिनव मुखर्जी।
प्रतिवादियों की ओर से जायेश गौरव, अमरेंद्र कुमार सिंह, टी. महिपाल।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति, दीपक मिश्रा ने दिया।

1. अनुमति प्रदान की गई।
2. यूनिवर्सल कंस्ट्रक्शन कंपनी, जो इस मामले में उत्तरवादी संख्या 3 है, ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में, इसके मूल क्षेत्राधिकार का सहारा लेते हुए, सिविल मुकदमा संख्या 480/1971 दायर किया, जिसमें इंजीनियर्स सिंडिकेट (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, जो इस मामले में उत्तरवादी संख्या 4 है, के विरुध्द 2,15,289.28 पैसे की राशि वसूलने के लिए था। उक्त मुकदमे में एकपक्षीय डिक्री पारित की गई। इस डिक्री के उत्तरवादी संख्या 3, ने 20 मई, 2005 को अबदुल रब, उत्तरवादी संख्या 1 के पक्ष में एसाइन कर दिया (यानी सौंप दिया) । सौंपे जाने के कार्य को औपचारिक रूप दिए जाने के बाद, प्रथम उत्तरवादी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय का रुख किया और उक्त डिक्री का निष्पादन कराने हेतु उत्तरवादी सेंख्या 4 (निर्णय ऋणि) की अचल संपत्तियां, जिस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में स्थित थीं, की कुर्की और बिक्री के माध्यम से निष्पादन के लिए अवर न्यायाधीश- I, जमशेदपुर के न्यायालय में स्थानांतरित करवा लिया। इसके बाद, प्रथम प्रतिवादी अचल सम्पत्तियों का एक अनुसूची (शिड्यूल) संलग्न करते हुए एक इजराय याचिका दायर की।

3.जैसा कि तथ्यात्मक सांचे (मैट्रिक्स) खुलने से पता चलेगा, निष्पादन न्यायालय 23.8.2006 को डिक्री प्राप्त होने के बाद चौथे प्रतिवादी को पंजीकृत डाक से नोटिस जारी किया और जब

तामीला प्रभावी नहीं हुआ, तो निर्णय-ऋणी की उपस्थिति के लिए प्रकाशन का तरीका अपनाया गया। अंततः, निष्पादन मामले को असाइनी-डिक्री-धारक की याचिका पर 9.3.2007 को एकपक्षीय सुनवाई के लिए तय किया गया। प्रक्रिया का पालन करने के बाद, अनुसूचित संपत्ति को नीलामी के माध्यम से बिक्री के लिए रखा गया और परिणामतः अब्दुल रफाई, उत्तर वादी नंबर 2 ने संपत्ति खरीदी और न्यायालय के आदेश के अनुसार उक्त अचल संपत्ति पर कब्जा पा लिया।

4.जैसा कि तथ्यात्मक वर्णन आगे फैलते है उक्त मरहले पर, वर्तमान अपीलकर्ताओं ने सिविल प्रक्रिया संहिता (सी.पी.सी.) के आदेश XXI, नियम 97, 99 और 101 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया कि विवादित सम्पत्ति मूल रूप से प्रतिवादी संख्या 4 की थी, जिसने 18.2.1971 को कलकत्ता में उक्त संपत्ति का बिक्री-विलेख (क़ेबाला) जमा करके इनके दिवंगत पिता, गोपाल सिंह से 14,571/- रुपये की राशि क़र्ज़ लिया था और उक्त उधार ली गई राशि के ब्याज के एवज़ में 19.2.1971 को गोपाल सिंह को उक्त संपत्ति का कब्जा सौंप दिया था। जब उधार ली गई राशि का भुगतान करने में प्रतिवादी संख्या 4 विफल रहा, तो उधार ली गई राशि यानी 14,571/- रुपये को समायोजित करने के लिए कथित सम्पत्ति को मुबलिग़ 25,000- रूपये प्रतिफल (ज़र-सम्मन) के एवज़ इसे गोपाल सिंह को बिक्रय करने पर अपनी सहमति व्यक्त की। उक्त व्यवस्था के अनुसार गोपाल सिंह ने शेष राशि 10,429/- रुपए अदा कर दिया और तदनुसार बिक्री के लिए एक बिक्रय क़रारनामा- निष्पादित किया गया । जब प्रतिवादी संख्या 4 ने क़रारनामा के अपने हिस्से का सम्मान नहीं किया, तो गोपाल सिंह ने प्रतिवादी संख्या 4 के खिलाफ सब जज-I, जमशेदपुर की अदालत में टाइटल सूट नंबर 43/1974 दायर किया और अंततः उक्त मुकदमे को द्वितीय अतिरिक्त सब जज-I के न्यायालय द्वारा, 14.05.1977 को, मुक़दमा डिक्री किया गया। इसके बाद, एक मामला दायर कर डिक्री के अनुसरण में एक बिक्री विलेख (सेलडीड) निष्दित करने की प्रार्थना की गई। दिनांक 10.10.1982 को अपीलकर्ताओं के पिता के पक्ष में न्यायालय के माध्यम से बिक्री विलेख निष्पादित किया गया और उन्हें प्रश्नगत संपत्ति के संबंध पर सिविल न्यायालय के नाजिर के माध्यम से कब्जा दिलाया गया। गोपाल सिंह के निधन के बाद, अपीलकर्ताओं ने, पुत्र होने के नाते, उक्त संपत्ति विरासत में प्राप्त की और 27.4.2008 तक इस पर स्वत्व , अधिकार, और हित के साथ कब्जे में रहे। जब अचानक, प्रतिवादी सं. 2 ने नाजिर की मदद से अपीलकर्ताओं को वहां से बेदखल कर दिया और संपत्ति की सुपुर्दगी ले ली। इस सम्बंध में जांच किए जाने पर उन्हें पता चला कि किन परिस्थितियों में ऐसा किया गया। आवेदन में आगे कहा गया कि निष्पादन वाद संख्या 24/2006 में संलग्न संपत्ति की अनुसूची को जानबूझकर जोड़ा गया था, हालांकि प्रतिवादी संख्या 4 का इससे कोई लेना-देना नहीं था। यह भी कहा गया कि दिनांक 15.03.2006 को स्थानीय दैनिक 'उदितवाणी' में कुर्की का आदेश प्रकाशित हुआ था। अनुसूचित संपत्ति के संबंध में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा वाद संख्या 480/1971 में 23.10.1982 को आदेश दिया गया था और अपीलकर्ताओं के पिता को इसकी जानकारी होने पर उन्होंने उच्च

न्यायालय के समक्ष आपत्ति दर्ज कराई थी, जिसने आपत्ति पर विचार करने और अपीलकर्ताओं के पिता के अधिकार, स्वत्तव और हित को ध्यान में रखते हुए उक्त संपत्ति को कुर्की से मुक्त कर दिया था, लेकिन उत्तर वादी संख्या 1 ने सभी तथ्यों को छिपाकर उक्त संपत्ति को कथित इजराय की अनुसूची में प्रदर्शित कर जब्त करवा लिया। और उसे नीलामी अनुसूची में डाल दिया तथा उत्तरवादी संख्या 1 ने उत्तरवादी संख्या 2 को स्थापित कर के आपसी मिली भगत से संपत्ति का खरीदार बनवा दिया। यह भी कि अनुसूची में दी गई सम्पत्ति यह कुर्की और बिक्री के लायक़ नहीं था, क्योंकि इसे कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही कुर्की से मुक्त करा लिया गया था. और, किसी भी हालत में, उत्तरवादी संख्या 4 का उक्त संपत्ति से कोई संबंध नहीं था। आवेदन में उत्तरवादीगण द्वारा ,जो निचली अदालत में आवेदक थे यह प्रार्थना की गई थी, कि अपीलकर्ताओं को अनुसूचित संपत्ति का कब्ज़ा दिलवाया जाना चाहिए और उत्तरवादीगण को आवेदन के न्यायनिष्पादन तक संपत्ति की प्रकृति और चरित्र को बदलने से रोका जाना चाहिए।

5.उक्त आवेदन का उत्तरवादी संख्या 1 और 2, विपक्षी पक्ष संख्या 1 और 2, निष्पादन न्यायालय के समक्ष विपक्षी पक्ष संख्या 1 और 2, द्वारा कई आधारों पर विरोध किया गया और मूल रूप से तथ्यों को दोहराया गया कि किस प्रकार कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा डिक्री पारित की गई थी और किस प्रकार असाइनमेंट (डिक्री सपुर्दगी) का कार्य हुआ, और इसके अलावा संपत्ति को नीलाम करने और अंततः बिक्री में अपनाई गई प्रक्रिया की निष्पक्षता के बारे में भी बताया गया था।

6.निष्पादन न्यायालय ने दो विवाद्दयक तय किए जो इस प्रकार है:-

> “I. क्या हस्तांतरणित निष्पादन न्यायालय के पास आदेश XXI नियम97, 99 और 101 सी.पी.सी. के तहत आवेदकों द्वारा दायर वर्तमान आवेदन पर न्याय निर्णयन लेने का अधिकार क्षेत्र है ?
>
> II. क्या आवेदकगण अपने आवेदन में किए गए दावे की (दादरसी) अनुतोष पाने के हकदार हैं?

7.निष्पादन अदालत ने दोनों पक्षों की दलीलों पर गौर किया, निष्पादन के लिए डिक्री को स्थानांतरित करने के लिए कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का हवाला दिया, सी.पी.सी की धारा 39 से 42 के तहत प्रावधानों पर तवज्जह दिया, सी.पी.सी की धारा 42 के तहत स्थानांतरित अदालत की शक्तियों की सीमा के संबंध में विधि के कुछ प्रमाणिक निर्वचन पर भरोसा करते हुए, इस तथ्य को दर्ज किया कि उसने 19.12.2008 को डिक्रीधारक की पूर्ण संतुष्टि पर निष्पादन मामले को पहले ही खारिज किया जा चुका है और तद्नुसार कलकत्ता

उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को इसकी सूचना भी दे दिया है, और अंततः यह निष्कर्ष निकाला कि उसके पास निष्पादन से सम्बंधित मामले में किसी तीसरे पक्ष के तहरीक पर पक्षकारों के स्वत्वाधिकार पर विचार करने के लिए संबंधित मामले को फिर से खोलने और चर्चा करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। उस पृष्ठभूमि में, यह संप्रेक्षित किया गया कि निष्पादन अदालत (फंक्टस ऑफिसियो) पदकार्य निवृत हो चुका है, और आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता और इस प्रकार आवेदन को विचारार्थ ग्रहण नहीं किया। दूसरे विवाद्दयक पर तवज्जह देते हुए, निष्पादन अदालत ने कहा दलीलों पर विचार किया और पहले उद्धृत प्रमाणिक निर्वचन का हवाला देते हुए अंततः यह राय दी कि चूंकि यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि स्थानांतरित न्यायालय को आवेदन पर विचार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। फिर इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि डिक्री को पूर्ण संतुष्टि के साथ निष्पादित किया गया है और कलकत्ता उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को सूचना भेज दी गई है, उठाए गए विवाद पर विचार नहीं किया जा सकता और कोई राहत नहीं दी जा सकती।

8.उक्त आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत डब्ल्यू.पी.सी. संख्या 348/2011 में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। उत्तरवादी-1 की ओर से प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई कि सी.पी.सी. के आदेश XXI, नियम 98 से 100 के तहत पारित आदेश, सी.पी.सी. के आदेश XXI, नियम 103 के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार एक डिक्री है और इसलिए, एक अपील होगी और रिट याचिका स्वीकार्य नहीं है। प्रारंभिक आपत्ति का विरोध यह तर्क देकर किया गया कि केवल उन आदेशों को ही डिक्री माना जाएगा जो पक्षों के बीच विवाद का फ़ैलला करते हैं, लेकिन जैसा कि वर्तमान मामले में, न्यायालय ने विचाराधीन विवाद (Lis) पर कोई अदालती हुक्म नहीं दिया था बल्कि उसने यह राय व्यक्त की थी कि अदालत पदकार्य निवृत (फंक्टस ऑफ़िसियो) हो चुका था, जिसके बाद उसका कोई क्षेत्राधिकार नहीं रह गया था, इसलिए अपील नहीं हो सकती।

9.विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आधार पर प्रारंभिक आपत्ति स्वीकार कर ली कि निष्पादन न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बारे में पक्षों के बीच विवाद सी.पी.सी. के आदेश XXI, नियम 100 के तहत निर्धारित किया जा सकता है और जब इस आधार पर निर्णय दिया गया तो यह सी.पी.सी. के आदेश XXI, नियम 103 के तहत एक डीम्ड डिक्री होगी और इसलिए, रिट याचिका ग्रहणीय नहीं थी। उपर्युक्त दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति रिट याचिका को खारिज करने का कारण बनती है। इसलिए, विशेष अनुमति द्वारा वर्तमान अपील लाई गई है।

10.हमने अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री सौरभ एस. सिन्हा और उत्तरवादियों के विद्वान वकील श्री जयेश गौरव को सुना है।

11.आक्षेपित आदेश की आलोचना करते हुए श्री सिन्हा ने तर्क दिया है कि, विद्वान एकल न्यायाधीश आदेश XXI, नियम 97 से 103 में प्रयुक्त भाषा को समझने में विफल रहे हैं, जो निष्पादन न्यायालय को सभी पहलुओं से संबंधित विवाद का न्यायनिर्णयन करने का आदेश देता है और इसलिए, जब निष्पादन न्यायालय ने केवल यह राय दी है कि वह (फंक्टस औफ़िसियो) पदकार्य निवृत हो गया है, तो उक्त आदेश को डिक्री के रूप में नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार आग्रह किया गया कि कथित उक्त आदेश, न्यायालय द्वारा उसमें निहित शक्तियों के इस्तेमाल से इन्कार करने के समान है[1]। इसलिए, इस तरह की त्रुटि को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधीक्षण शक्ति का प्रयोग करते हुए सुधारा जाना चाहिए। उनका आगे यह तर्क है कि बाबूलाल बनाम राज कुमार और अन्य-(1) के मामले में दिएये गये विनिशचय के निर्णयाधार को अपनी समझ के अनुसार उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण भ्रामक है। इस तर्क को पिरामिड करने के लिए कि कानून के अनुसार एक न्यायनिर्णयन होना चाहिए, विद्वान वकील ने घासी राम एवं अन्य बनाम चैत राम सैनी एवं अन्य[2] तथा राम कुमार तिवारी एवं अन्य बनाम दीनानाथ एवं अन्य[3] पर अपनी दलील को अवलम्बन दिया.

12.उत्तरवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री जयेश गौरव ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के समर्थन में तर्क दिया कि जब निष्पादन अदालत ने स्पष्ट रूप से यह विचार व्यक्त किया कि आदेश XXI, नियम 97 से 103 के तहत जिन मुद्दों पर विचार किया जाना अपेक्षित है, उन पर विचार करने का उसके पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, तो आगे कार्यवाही करने की कोई आवश्यकता नहीं थी और यह न्याय का उपहास होगा यदि यह समझा जाए कि जब किसी तीसरे पक्ष की ओर से दिए गए आवेदन पर कोई न्यायनिर्णय नहीं हुआ है तो वह डिक्री नहीं मानी जाएगी. उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि न्यायनिर्णय का अर्थ आवश्यक रूप से साक्ष्य रिकॉर्ड करना, मामले में उठाए गए अधिकार, स्वत्व और हित के मुद्दों को विचरित करना ही किसी आदेश को डिक्री ख़याल करने के लिए आदेश 21 नियम 103 के लिए कोई शर्त मुक़र्रर नहीं है. उनके द्वारा यह आग्रह किया गया कि जब आपत्ति अपने अंतिमता को पहुंच जाती है तो यह आदेश XXI, नियम 103 के तहत परिकल्पित (डीम्ड) डिक्री का चरित्र ग्रहण कर लेती है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज कारणों में कोई ख़ामी नहीं निकाली जा सकती है। अपने तर्क के

[1, 2,3] (1996) 3 एससीसी 154 (1998) 6 एससीसी 200 एआईआर 2002 छत्तीसगढ़

समर्थन में, विद्वान वकील ने हमें एस. राजेश्वरी बनाम एस.एन. **कुलशेखरन और अन्य**[4] में दिए गए विनिश्चय की सिफ़ारिश जताई.

13. बार में (अधिवक्ताओं द्वारा) उठाए गए सबमिशन्स की क़दर करने के लिए, सीपीसी के आदेश XXI, नियम 97 से 103 में निहित प्रावधानों के पूरे दायरे और उसके पीछे के मौलिक उद्देश्यों की सराहना करना आवश्यक है । नियम 97 कब्जे के लिए डिक्री धारक या डिक्री के निष्पादन में बेची गई किसी भी ऐसी संपत्ति के खरीदार के कब्जे में प्रतिरोध या बाधा से संबंधित है। यह ऐसे व्यक्ति को ऐसे प्रतिरोध या बाधा की शिकायत करते हुए न्यायालय में आवेदन दायर करने का अधिकार देता है और उप-नियम (2) के तहत न्यायालय से उसमें दिए गए प्रावधानों के अनुसार आवेदन पर फैसला करने की अपेक्षा करता है। नियम 99 डिक्री धारक या खरीदार के बेदखली से संबंधित है. यह निर्धारित करता है कि जहां निर्णय-ऋणी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को अचल सम्पत्ती से बेदखल किया जाता है, ऐसी संपत्ति के कब्जे के लिए डिक्री धारक द्वारा अचल संपत्ति या जहां ऐसी संपत्ति डिक्री के निष्पादन में बेची गई है, उसके खरीदार द्वारा, वह ऐसे बेदखली की शिकायत करते हुए न्यायालय में आवेदन कर सकता है। न्यायालय ऐसे आवेदन का न्यायनिर्णयन करने के लिए बाध्य है। इस प्रकार यह नियम, जैसा कि स्पष्ट है, निर्णीय-ऋणी के अलावा किसी भी व्यक्ति को शामिल करता है। नियम 101 निर्धारित किए जाने वाले प्रश्नों से संबंधित है। यह प्रदान करता है कि नियम 97 या नियम 99 के तहत किसी आवेदन पर कार्यवाही में पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के बीच उत्पन्न होने वाले संपत्ति में अधिकार, स्वत्त या हित से संबंधित प्रश्नों सहित सभी प्रश्न, और आवेदन के न्यायनिर्णयन के लिए, प्रासंगिक आवेदन से निपटने वाले न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाएंगे न कि एक अलग मुकदमे द्वारा और उक्त उद्देश्य के लिए, निष्पादन न्यायालय को इसे तय करने के लिए क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। नियम 100 बेदखली की शिकायत पर पारित किए जाने वाले आदेशों से संबंधित है. उक्त नियम को पुनः प्रस्तुत करना बर-महल होगा :-

“नियम 100. बेदखली की शिकायत के आवेदन पर पारित किए जाने वाले आदेश.- नियम 101 में निर्दिष्ट प्रश्नों के निर्धारण पर, न्यायालय ऐसे विनिश्चय के अनुसार,-

(ए) आवेदन को स्वीकार करते हुए आदेश पारित कर सकता है और निदेश दे सकता है कि आवेदक को संपत्ति पर कब्ज़ा दिलवाया जाए या या आवेदन को खारिज कर सकता है; या

---

[4] (2006) 4 एससीसी 412

(ख) ऐसा आदेश पारित कर सकता है जो मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, वह उचित समझे.

14. नियम 98 न्यायनिर्णयन के पश्चात आदेशों से संबंधित है। उप-नियम (1) यह प्रावधानित करता है कि नियम 101 में संदर्भित प्रश्नों के निर्धारण के पश्चात न्यायालय विनिश्चय के अनुसार तथा उप-नियम (2) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए आवेदन को स्वीकार करते हुए निर्देश देगा कि आवेदक को संपत्ति का कब्जा दिया जाए या आवेदन को खारिज कर सकता है या कोई ऐसा अन्य आदेश पारित करेगा, जैसा कि मामले की परिस्थितियों में वह उचित समझे। जहां तक उप-नियम (2) का संबंध है, वर्तमान मामले के प्रयोजनों के लिए उस पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। नियम 103 जो महत्वपूर्ण है, इस प्रकार पाठ्य है:-

"नियम 103. आदेशों को डिक्री के रूप में माना जाना:-

जहां किसी आवेदन पर नियम 98 या नियम 100 के तहत न्यायनिर्णय दिया गया है, वहां उस पर दिया गया आदेश अपील या अन्यथा के लिए समान बल और समान शर्तों के अधीन होगा जैसे कि वह एक डिक्री हो।,,

15. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील का तर्क है कि यदि उक्त नियमों में अंतर्निहित योजना को उचित रूप से समझा जाए तो यह स्पष्ट है कि कार्यवाहियों की बहुलता से बचने के लिए विधायिका ने निष्पादन न्यायालय को सशक्त बनाया है ताकि निष्पादन न्यायालय आवश्यक जांच करने और पक्षों को मौखिक और दस्तावेजी दोनों तरह के साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देकर निर्णय लेने और पक्षों के अधिकार, हक़ और हित निर्धारित करने के लिए कहा गया है और इसलिए, इस तरह के आदेश को डिक्री का दर्जा दिया गया है। जैसा कि उन्होंने कहा है, नियम 97 या नियम 99 के अनुसार कार्यवाही एक मुकदमे की प्रकृति की होती है और न्यायनिर्णयन एक वाद (सूट) के समान होता है और जब वर्तमान मामले में न्यायालय ने जवाब मांगने, साक्ष्य दर्ज करने और विवाद का उचित ढंग से न्यायनिर्णयन करने, कोई जांच शुरू करने से इनकार कर दिया है, तो पारित आदेश को आदेश आदेश XXI के नियम 103 के तहत डिक्री के समकक्ष नहीं माना जा सकता है

इस संदर्भ में जो न्यायिक प्राधिकार हमें सुझाए गए हैं, उन पर सावधानी पूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है।

16. नूरुद्दीन बनाम डॉ. के.एल. आनंद[5] मामले में निष्पादन न्यायालय ने अपीलार्थी की याचिका इस आधार खारिज कर दी पर थी कि उच्च न्यायालय पहले ही इस विवाद का विनिश्चय कर चुका है। नियम 97, 98 और 100 से 104 में प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण करते हुए न्यायालय ने निर्धारितकिया:-

“इस प्रकार, संहिता की योजना स्पष्ट रूप से ख़ाका बनाती है कि जब आदेश 21, नियम 97 के तहत आवेदन दिया जाएगा तो अदालत को अचल सम्पत्ति से सम्बंदधित अधिकार, स्वत्व, एंव हित से के दावों प्रतिदावों पर अपना न्यायनिर्णयन आदेश देगा और इस प्रकार दिया गया विनिश्चय पक्षकारों के दर्मयान अंतिम होगा गोया कि यह एक डिक्री होगा जो अपील के अधीन मानी जाएगी, न कि एक अलग मक़दमा द्वारा इसी विवाद को दुबारा हरकत में लाना। दूसरे शब्दों में, कोई अन्य कार्यवाही करने की अनुमति नहीं होगी। यह याद रखना होगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम, 1976 के पहले आदेश XXI, नियम 103, 1908 संहिता के तहत वाद (सूट) दायर करने का अधिकार उपलब्ध था जिसे अब वापस ले लिया गया है। आवश्यक निहितार्थ से, विधायिका ने निष्पादन न्यायालय के तहत ही इस प्रकार के अचल संपत्ति में अधिकार, स्वत्व या हित के न्यायनिर्णयन के लिए पक्षों को वापस भेज दिया और इसे अंतिम रूप दिया गया है। इस प्रकार, संहिता की योजना निष्पादन में होने वाले विलंब-तवालत को समाप्त करने तथा निष्पादन प्रक्रिया में अचल संपत्ति से सम्बंधित अधिकार, स्वत्व और हित का दावा करने वाले पक्षकारों या व्यक्तियों के बीच मुकदमेबाजी को छोटा करना भी इसका मक़सद है।"

आगे स्पष्टीकरण देते हुए न्यायालय ने विचार व्यक्त किया है कि निष्पादन से पहले इस प्रकार के विवादों के विनिश्चय का उपचार मुहैया कर देना, धोखाधड़ी, उत्पीड़न, न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या न्याय की विफलता को रोकने के लिए एक प्रभावी उपाय है। कानून का उद्देश्य न्याय करना है और इसलिए आदेश XXI, नियम 98, 100 और 101 तथा इसके क्रमिक नियमों के तहत न्याय निर्णय निष्पादन के अधीन अचल संपत्ति में अधिकार, हक़ या हित के न्याय निर्णय की अंतिमता के लिए अनिवार्य है।

17. बाबूलाल (सुप्रा) मामले में अपीलकर्ता को यह आशंका थी कि निष्पादन कार्यवाही में वह बेदखल किया जा सकता है . कब्जे पर आधारित स्वत्व के आधार पर एक आवेदन दायर किया था और उस में अंतरिम निषेधाज्ञा आदेश प्राप्त कर ली थी। उन्होंने एक

---

[5] (1995) 1 एससीसी 242

आवेदन इस आशय का भी दिया था कि उन्हें बेदेखल न किया जाए. उनकी आपत्ति को निष्पादन न्यायालय ने नामंज़ूर कर दिया यह विचार व्यक्त करते हुए कि चूंकि वह बेदखल नहीं किया गया है इसलिए आदेश XXI नियम 98 के तहत आवेदन ग्राह्य नहीं है. अपने इस विचार की पुष्टि के लिए उस ने(निष्पादन न्यायालय ने) उच्च न्यायालय द्वारा सिविल रिवीज़न मे व्यक्त विचार का सहारा लिया।(उच्च) न्यायालय ने आदेश आदेश XXI,, नियम 98 से 102 की व्याख्या करते हुए भंवर लाल बनाम सत्यनारायण एंव अन्य (Bhanwar Lal v. Satyanarain and Another[6]) को निर्दिष्ट किया और मामले में यह विचार व्यक्त किया कि स्पष्टतः एक विनिश्चय आदेश XXI, नियम 98 के तहत रुकावटकर्ता या अपीलकर्ता के रुकावटकृत्य से पहले एक फाइंडिंग देना और उस संबंध में विनिश्चय दर्ज किया जाना आपेक्षित है। न्यायालय ने व्यवस्था दिया कि 1976 के पहले आदेश XXI, नियम 103 के तहत ऐसा आदेश डिक्री के दायरे में एक वाद (सूट) था लेकिन संहिता में संशोधन के बाद पुराने संहिता के आदेश XXI, नियम 63 को वापस ले लिया गया। और आपत्तिकर्ता का अचल सम्पत्ति में अधिकार, स्वस्व और हित से सम्बंधित प्रश्न निष्पादन की कार्यवाही के अन्तर्गत आदेश XXI नियम 98 के अंतर्गत विनिश्चित करना लाज़िम है जो एक आदेश है और वह अपील के उद्देश्य के लिए आदेश XXI नियम 103 के तहत एक डिक्री होगी, जो अपील के लिए समान शर्तों के अधीन है या अन्यथा जैसे कि यह एक डिक्री थी। न्यायालय ने आगे कहा कि निर्धारित प्रक्रिया अपने आप में एक पूर्ण संहिता है और इसलिए, निष्पादन न्यायालय को प्रश्न का निर्धारण करना आपेक्षित है।

18. घासी राम एवं अन्य (सुप्रा-ऊपर) के मामले में, सी.पी.सी. में 1976 में लाए गए संशोधन से पहले के प्रावधानों और संशोधन के बाद की स्थिति के बीच अंतर करते हुए, दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार टिप्पणी की थी:-

"संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता में संशोधन के बाद स्थिति बदल गई है।" अब संशोधित प्रावधानों के तहत नियम 97 के तहत कार्यवाही में पक्षकारों के अधिकार, स्वत्व और हितों सहित सभी प्रश्नों का विनिश्चय स्वंय निष्पादन न्यायालय द्वारा ही किया जाना चाहिए और इसे नए मुक़दमा द्वारा फ़ैसले के लिए नहीं छोड़ा जाना है।"

19. एस. राजेश्वरी (सुप्रा) के मामले में, अपीलकर्ता उन व्यक्तियों में से एक था, जिन्होंने प्रथम प्रतिवादी द्वारा प्राप्त डिक्री के निष्पादन में बाधा डाली थी और उसने सी.पी.सी.

---

[6] (1995) 1 एससीसी 6

की धारा 151 के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसे निष्पादन अदालत ने इस आधार पर खारिज कर दिया था कि यह विचारणीय नहीं था।

उक्त आदेश से आहत होकर उन्होंने एक पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की, जिसे उच्च न्यायालय ने स्वीकार कर लिया। न्यायालय ने सी.पी.सी. की धारा 151 के तहत प्रस्तुत आवेदन को आदेश XXI, नियम 97 के तहत माना क्योंकि निष्पादन अदालत ने साक्ष्य रिकॉर्ड करने के लिए कार्यवाही की और उसके बाद मामले का फैसला सुनाया। डिक्रीधारक के साक्ष्य पर विचार किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रश्नगत भूखंड की पहचान स्थापित नहीं की गई थी और इस प्रकार वादी दखल दिहानी डिक्री के लिए डिक्री को निष्पादित कराने में अक्षम हो गया था। इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने सी.पी.सी. की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण याचिका पर विचार करने में गलती की थी, क्योंकि कथित आदेश सी.पी.सी. के आदेश XXI, नियम 103 के तहत एक डिक्री था और इसलिए, एक अपील होनी चाहिए। उक्त तर्क को इस न्यायालय ने स्वीकार कर लिया।

20. इस मोड़ पर, हम ब्रह्मदेव चौधरी बनाम ऋषिकेश प्रसाद जयसवाल और अन्य[7] के मामले में दिए गए फैसले का हवाला देते हुए फ़ायदा उठा सकते हैं, जिसमें दो न्यायाधीशों की पीठ ने नियमों की संरचना का अध्ययन करने पर यह निर्धारित किया कि: डिक्री के लिए अजनबी व्यक्ति जो डिक्रीटल संपत्ति में एक स्वतंत्र अधिकार, स्वत्व और हित का दावा करता है, वास्तव में बेदखल होने से पहले अपना प्रतिरोध पेश कर सकता है। वह समान रूप से आदेश XXI, नियम 99 के तहत कब्जा खोने के बाद भी डिक्रीटल संपत्ति में अपने स्वतंत्र अधिकार, स्वत्व और हित के विनिश्चय के लिए अपनी शिकायत और दावा जारी रख सकता है। आदेश XXI, नियम 97 एक ऐसे चरण से संबंधित है जो सम्पत्ति पर कब्जे के लिए डिक्री के वास्तविक निष्पादन से पहले की स्थिति है जिसमें अवरोधक की शिकायत पर डिक्री को कब्जे की वास्तविक दखलदिहानी (डिलीवरी) से पहले अवरोधकर्ता की शिकायत पर विनिश्चय किया जा सकता है. जब कि दूसरी तरफ आदेश, XXI नियम 99 निष्पादन कार्यवाही में बाद के चरण से संबंधित स्थिति का ज़िक्र है, जहां डिक्रीटल संपत्ति में किसी भी अधिकार, स्वत्व और हित का दावा करने वाला कोई अजनबी व्यक्ति वास्तव में बेदखल हो गया हो और अपने स्वतंत्र अधिकार, स्वत्व और हित के विनिश्चय पर कब्जे की बहाली का दावा करता है। डिक्री के लिए अजनबी के अधिकार, स्वत्व और हित के संबंध में इन दोनों प्रकार की जांचों को आदेश XXI की उपरोक्त योजना द्वारा स्पष्ट रूप से परिकल्पित किया गया है, और ऐसा नहीं है कि डिक्री के लिए ऐसा अजनबी

---

[7] एआईआर 1997 एससी 856

केवल कब्जा खोने के बाद अंतिम चरण में ही पटल पर आ सकता है और इससे पहले नहीं, यदि वह अपने खिलाफ कब्जे के हुक्मनामा के वास्तव में निष्पादित होने से पहले अपनी आपत्ति और रुकावट प्रस्तुत करने में पर्याप्त ढंग से सतर्क रहा है।

21. उपरोक्त न्यायिक-प्राधिकार से स्पष्टतः प्रदर्शित होता है कि अदालत को पूरा एख़्तियार है कि वह पक्षकारों के दरम्यान संपत्ति में अधिकार, स्वत्व या हित से संबंधित विवाद पर विनिश्चय करे।। इसमें किसी अजनबी का दावा भी शामिल है जो बेदखली की आशंका रखता है या जिसे पहले ही अचल संपत्ति से बेदखल किया जा चुका है। स्व-निहित संहिता, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ज़ोर दिया गया है, निष्पादन न्यायालय को हिदायत देता है कि वह विवाद का विनिश्चय करे और इसका उद्देश्य कार्यवाहियों की बहुलता से बचना है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि 1976 के संशोधन से पहले ऐसी शिकायत के लिए वाद दायर करना भी अपेक्षित था। लेकिन संशोधन के बाद इस प्रकार के मामलों की पूरी जांच निष्पादन अदालत द्वारा की जानी है। आदेश XXI, नियम 101 आवश्यक मुद्दों का विनिश्चय की (शक्ति) प्रदान करता है। उपर्युक्त आदेश का नियम 103 स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि जब नियम 98 या नियम 100 के तहत किसी आवेदन पर विनिश्चय किया जाता है तो उक्त आदेश का वही मतलब होगा जैसे कि वह एक डिक्री हो। इस प्रकार, यह एक डीम्ड डिक्री है। यदि कोई न्यायालय इस आधार पर न्यायनिर्णयन करने से इन्कार करता है कि उसके पास क्षेत्राधिकार नहीं है, तो उक्त आदेश डिक्री का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता है। यदि एक निष्पादन अदालत केवल इस आधार पर विनिश्चय करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करती है कि उसके पास क्षेत्राधिकार नहीं है, तो ऐसे आदेश का दर्जा भिन्न होगा। प्रस्तुत मामले में निष्पादन अदालत ने अपनी राय व्यक्त की है कि वह पदकार्य निवृतत (फंक्टस औफ़िसियो) हो चुका है और इसलिए वह अब कोई जांच शुरू नहीं कर सकता। अपीलकर्ताओं ने संविधान की धारा 227 के तहत निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को इस आधार पर चुनौती दी है कि वह (निष्पादन न्यायालय) अपने अन्दर निहित शक्ति का उपयोग करने में विफल रहा है। अपीलार्थीगण ने उच्च न्यायालय का रुख़, संविधान के अनुच्छेद 227 में *निहित* शक्तियों का आह्वान करते हुए, निष्पादन न्यायालय के आदेश को आक्षेपित करते हुए किया था कि वह अपने अन्दर निहित शक्तियों का उपयोग करने में विफल रहा है। अपीलार्थीगण उच्च न्यायालय का रुख़, इस न्यायालय द्वारा **सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य**[8] के मामले में निर्धारित नियमों के अनुसार, किया था। .

---

[8] (2003) 6 एससीसी 675 एआईआर 1949 पीसी 239

22. क्या निष्पादन न्यायालय, इन प्राप्त परिस्थितियों में अपना विचार सही तरीक़े से रख पाया है या नहीं कि वह क्षेत्राधिकार रखता है या नहीं। यह बात बुनियादी तौर पर क्षेत्राधिकार के चूक से तअल्लुक़ रखता है । इस प्रकार यह ऐसा है कि मामले में कोई विनिश्चय नहीं किया गया था। यदि अधीनस्थ न्यायालय ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है जो कानून उसमें निहित नहीं है या इस प्रकार निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहता है, तो संहिता की धारा 115 के तहत उक्त आदेश पुनरीक्षण योग्य है जैसा कि **जॉय चाँद लाल बाबू बनाम कामालाक्ष चौधरी और अन्य** के मामले में निर्धारित किया गया है [9]. **केशरदेव चमरिआ बनाम राधा किशन चमरिआ और अन्य**[10] एंव **चौबे जगदीश और अन्य तथा गंगा प्रसाद चतुर्वेदी** [11] **के मामलों में** इसी सिध्दांत को बार बार दुहराया गया है।. कथित सिध्दांत को बार बार दुहराना ग़ैरज़रुरी है कि यह सिध्दांत पूरी तरह से स्थापित हो चुका है कि सी.पी.सी. की धारा 115 में दिनांक 1.7.2002 से प्रभावी संशोधन के बाद, उक्त शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत **सूर्य देव राय** (सुप्रा-ऊपर) में निर्धारित सिद्धांत के अनुसार किया जाता है। यदि निष्पादन न्यायालय ने यह विचार व्यक्त करने के अलावा कि वह (फंक्टसऔफ़िसियो) पदकार्य निवृत हो चुका है, उत्पन्न विवादक का विनिश्चय गुणवत्ता के आधार पर किया होता तो सवाल अलग होता क्योंकि उस परिस्थिति में विनिश्चय हुआ होता।
23. उपर वर्णित विश्लेषण के मद्देनजर, हम निष्कर्ष निकालते हैं और मानते हैं कि उच्च न्यायालय ने यह राय बनाकर गलती की है कि निष्पादन न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय एक डिक्री है और, इसलिए, एक अपील दायर की जानी चाहिए थी, और नतीजतन हम अपील को स्वीकार करते हैं और आक्षेपित आदेश को रद्द करते हैं। उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत मामले पर आवश्यकतानुसार निर्णय लेगा। चूंकि काफी कालावधि बीत चुकी है, इसलिए हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करेंगे कि वह तीन महीने की अवधि के भीतर मामले का निपटारा करे। ख़र्चा के बारे में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

---

[9] एआईआर 1953 एससी 23 एआईआर 1959 एससी 492

[10] एआईआर 1953 एससी 23 एआईआर 1959 एससी 492

[11]

राजेन्द्र प्रसाद अपील स्वीकृत

यह अनुवाद मो. अशरफ हुसैन अंसारी (पैनल अनुवादक) के द्वारा किया गया।